भारतीय कला एवं संस्कृति

By

S K Pandey

53/6, 2nd Floor, Old Rajinder Nagar, Delhi-60

99101-33084

विषय सूची

क्र.स.		पेज.न.
1.	भारतीय कला	1-3
2.	भारतीय स्थापात्य एवं वास्तुकला	4-15
3.	मूर्तिकला एवं चित्रकला	16-30
4.	नृत्यकला एवं संगीतकला	31-41
5.	भारतीय रंगमच एवं चलचित्र	42-50
6.	भारतीय संस्कृति	51-55
7.	भारतीय समाज	56-74
8.	धर्म एवं दर्शन	75-87
9.	भाषा और साहित्य	88-98
10.	विदेशी यात्रियों एवं लेखकों के विवरण	99-104

1 भारतीय कला

कला का अर्थ एवं अभिप्राय

इतिहास तथा संस्कृति में 'कला' से तात्पर्य सौन्दर्य अथवा आनन्द से है। यदि कला के शाब्दिक अर्थ को विश्लेषित किया जाए तो अपने मनोभावों को सौन्दर्य के साथ दृश्य रूप में व्यक्त करना कला कहलाता है। कला वास्तव में वह विधा है। जो मनुष्य के मन में उठने वाली सुंदर कल्पनाओं को मूर्त रूप देता है। कलाकार अपनी कला को सजीव करने के लिए हरसंभव प्रयत्न करता है। इसलिए समाज में कलाकार के कार्य को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।

संस्कृत कोश में 'कला' शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है जैसे- अलंकरण, शोभा, चन्द्रमा की उपमा आदि। किंतु इतिहास तथा संस्कृति में 'कला' से तात्पर्य सौन्दर्य, सुन्दरता अथवा आनन्द से है। वास्तव में अपने मनोभावों को सौन्दर्य के साथ दृश्य रूप में व्यक्त करना ही कला है। दूसरे शब्दों में, कला मनुष्य की सौन्दर्य भावना को मूर्तरूप प्रदान करती है। प्रत्येक कलात्मक प्रक्रिया का उद्देश्य सौन्दर्य तथा आनन्द की अभिव्यक्ति होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा इस रूप में उसे अपनी भावनाओं तथा विचारों का प्रत्यक्षीकरण करना पड़ता है। यह प्रत्यक्षीकरण अथवा प्रकटीकरण कला के माध्यम से ही संभव है।

प्राचीन भारत में कला को साहित्य और संगीत के समकक्ष मानते हुए मनुष्य के लिए इसे आवश्यक बताया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथ नीतिशतक में स्पष्टत: लिखा है कि 'साहित्य, संगीत तथा कला से हीन मनुष्य पशु के समान है।' भारतीय परम्परा में कला को लोकरंजन का समानार्थी निरूपित किया गया है। इसका इतिहास अत्यन्त प्राचीन तथा गौरवशाली है। प्राचीन भारत के लगभग समस्त कलात्मक अवशेषों की प्रकृति धार्मिक है, अथवा उनकी रचना धार्मिक उद्देश्यों से हुई थी। परंतु कुछ धर्मनिरपेक्ष कला के भी प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन भारतीय राजा सुन्दर भित्ति चित्रों एवं कलात्मक मूर्तियों से सुसज्जित भवनों में निवास करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ अवशेष ऐसी धार्मिक भावना से परिपूर्ण हैं जो संसार में दुर्लभ हैं। प्राचीन भारत की कला में उस काल का पूर्ण एवं क्रियात्मक जीवन ही मुख्य रूप से प्रतिबिम्बित है। वस्तुत: भारतीय कला की सामान्य प्रेरणा परमात्मा की खोज में उतनी नहीं है जितनी कि कलाकार द्वारा प्राप्त संसार के आनन्द में, ऐन्द्रिक चेतन शक्ति में तथा पृथ्वी पर जीवित प्राणियों के विकास के समान नियमित और चेतन शक्तियुक्त विकास और गति की भावना में है।

भारतीय कला की प्रमुख विशेषताएँ

भारतीय कला का विश्व में एक विशिष्ट स्थान है। इसकी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य देशों की कलाओं से पृथक करती हैं। प्राचीन भारत की कला उसके धार्मिक साहित्य से विलक्षण रूप से भिन्न है। साहित्य, व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों, ब्राह्मणों, मुनियों, संन्यासियों का कार्य है। लेकिन भारतीय कला मुख्य रूप से उन धर्मनिरपेक्ष कलाकारों द्वारा नि:सृत हुई जिन्होंने यद्यपि पुरोहितों के आदेश और कठोर धार्मिक नियमों के अनुसार कार्य किया, फिर भी वे उस संसार से प्रेम करते थे जिसे वे इतनी तीव्रता से जानते थे, जो प्राय: उन धार्मिक रूपों से देखी जाती है जिनमें उन्होंने आत्माभिव्यक्ति की। भारतीय कला की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- **अभिव्यक्ति की प्रधानता :** भारतीय कला में अभिव्यक्ति की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। कलाकारों ने सामान्यत: अपनी कुशलता का प्रदर्शन शरीर का यथार्थ चित्रण करने अथवा सौन्दर्य को उभारने में नहीं किया बल्कि उन्होंने इसके स्थान पर आंतरिक भावों को उभारने का प्रयत्न किया। भारतीय कलाकार ऊँचे आदर्शों से प्रेरित थे। उनके अनुसार कला सौन्दर्य मात्र इन्द्रिय सुख प्राप्ति का साधन नहीं था अपितु इसका उद्देश्य चित्तवृत्तियों को ऊपर उठाना था। वस्तुत: भारतीय कलाकारों ने अपनी कला में शांति, गंभीरता एवं अलौकिक आनन्द जैसे प्राकृतिक तत्वों को उभारने की ओर विशेष ध्यान दिया है तथा इसमें उन्हें अद्‌भुत सफलता भी मिली है।

- **निरन्तरता अथवा अविच्छिन्नता :** भारतीय कला की निरन्तरता अथवा अविच्छिन्नता को इसकी विशेषताओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। लगभग पाँच हजार वर्ष पुरानी सैन्धव सभ्यता की कलाकृतियों से लेकर बारहवीं सदी की कलाकृतियों में एक अविच्छिन्न कलात्मक परम्परा प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है। भारतीय कला के विभिन्न तत्वों-नगर विन्यास, भवन निर्माण, मूर्ति आदि का जो रूप हमें भारत की प्राचीनतम सभ्यता में दिखायी देता है उसी के आधार पर कालान्तर में वास्तु तथा तक्षण कला का विकास हुआ।
- **धार्मिकता एवं अध्यात्मिकता :** भारतीय संस्कृति का प्रधान तत्व धार्मिकता एवं अध्यात्मिकता की प्रबल भावना है। कला भी इसका अपवाद नहीं है। इसके सभी पक्षों-वास्तु, तक्षण, चित्रकला आदि के ऊपर धर्म एवं आध्यात्म का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित मन्दिरों, मूर्तियों तथा चित्रों का निर्माण कलाकारों द्वारा किया गया। किंतु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इसमें लौकिक या धर्म निरपेक्ष तत्वों की उपेक्षा की गयी।
- **प्रतीकात्मकता की प्रधानता :** भारतीय कला का एक विशिष्ट तत्व इसकी प्रतीकात्मकता है। भारतीय कलाकारों ने प्रतीकों के माध्यम से अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक एवं अध्यात्मिक विचारों को व्यक्त किया है। कुषाण युग के पूर्व महात्मा बुद्ध का अंकन प्रतीकों के माध्यम से ही किया गया है। अशोक के सारनाथ सिंहशीर्ष स्तंभ की फलक पर उत्कीर्ण चार पशुओं - गज, अश्व, बैल तथा सिंह - के माध्यम से क्रमशः महात्मा बुद्ध के विचार, जन्म, गृहत्याग तथा सार्वभौम सत्ता के भावों को व्यक्त किया गया है।
- **समन्वय की प्रवृत्ति :** भारतीय कला में समन्वय की प्रवृत्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। सुकुमारता का गंभीरता के साथ, रमणीयता का संयम के साथ, अध्यात्म का सौन्दर्य के साथ तथा यथार्थ का आदर्श के साथ अत्यन्त सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।
- **राष्ट्रीय एकता :** भारतीय कला में राष्ट्रीय एकता का तत्व स्थूल रूप में प्रकट होता है। समूचे देश की मूर्तियों में समान लक्षण तथा मुद्रायें देखने को मिलती हैं। विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों को देखने के बाद ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी देशव्यापी संस्था द्वारा तैयार करवायी गयी हैं। इनके माध्यम से भारतीय एकता की भावना साकार हो उठती है।
- **अलंकरण की प्रधानता :** अलंकरण का साज-सज्जा भारतीय कला का एक प्रधान तत्व है। प्राचीन काल से ही कलाकारों ने अपनी कृतियों को विविध प्रकार से अलंकृत करने का प्रयास किया है। अलंकरणों का उद्देश्य कलाकृति के सौन्दर्य को बढ़ाना है। अद्‌भुत अलंकरण के कारण ही गुप्तकालीन कुछ प्रतिमाओं में सौन्दर्य जीवन्त रूप से परिलक्षित होता है।

कला के विभिन्न अंग

'कला' शब्द से प्रायः सभी प्रकार की कलाओं का बोध होता है। फिर भी वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और नृत्य कला इसके प्रमुख अवयव माने जाते हैं। इसका विवरण इस प्रकार है-

- **वास्तुकला या स्थापत्य कला :** 'वास्तु' का शाब्दिक अर्थ होता है 'वह भवन जिसमें मनुष्य या देवता का वास हो'। इसी प्रकार 'स्थापत्य' शब्द 'स्थपति' से बना है जिसका अर्थ कारीगर या बढ़ई है'। अतः वास्तु एवं स्थापत्य दोनों ही भवन निर्माण से सम्बन्धित है। कला में दोनों का प्रयोग प्रायः समान अर्थ में ही किया गया है। किंतु सभी रचनाओं को स्थापत्य नहीं कहा जा सकता केवल वही वास्तु स्थापत्य कहे जा सकते हैं जिसमें कारीगरी अथवा नक्काशी की गयी हो।
- **मूर्तिकला :** इसे तक्षण कला भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ पाषाण अथवा धातु से निर्मित की जाती हैं।
- **चित्रकला :** चित्रकला से तात्पर्य विभिन्न आकृतियों के अंकन से है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार की चित्रकारियों का

उल्लेख मिलता है। चित्रकारी प्रायः भवनों की दीवारों, छतों, स्तंभों, पर्वतों, गुफाओं आदि में मिलती है।

- **संगीत कला :** संगीत को भी कला का एक अंग माना गया है। संगीत के सात स्वर हैं-

  (i) साज (सा) (ii) ऋषभ (रे), (iii) गांधार (ग)

  (iv) मध्यम (म), (v) पंचम (प) (vi) धैवत (ध),

  (vii) निषाद (नि)

- **नृत्य कला :** नृत्य एक कला है जिसमें नर्तक या नर्तकी की निरपेक्ष भंगिमाएं होती हैं जो मुख्य रूप से सौन्दर्य को उभारती हैं। प्रायः नृत्य भावात्मक होता है जिसमें किसी भाव या विषय को आधार बनाया जाता है।

2 भारतीय स्थापत्य एवं वास्तुकला

कला की विविध विधाओं में स्थापत्य एवं वास्तुकला का महत्वपूर्ण स्थान है। स्थापत्य एवं वास्तु दोनों ही भवन निर्माण से सम्बन्धित हैं। वास्तुकला और मानव सभ्यता में अटूट सम्बन्ध रहा है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ वैसे-वैसे वास्तु कला का भी विकास हुआ। वास्तु या स्थापत्य की विविध तकनीकों तथा भवनों के नाना रूपों पर प्रचुर विवरण वैदिक साहित्य से लेकर संस्कृत-प्राकृत साहित्य तक में प्राप्त होता है। हमारे प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद में धार्मिक तथा लौकिक दोनों प्रकार की वास्तु का उल्लेख हुआ है। वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तकों में विश्वकर्मा के नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। प्रथम को देवताओं तथा द्वितीय को असुरों का वास्तुकार माना गया है।

प्राचीन काल रहा हो या मध्यकाल या फिर आधुनिक काल भारत में वास्तु कला के उद्भव एवं विकास को स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित करता है। भारतीय स्थापत्य एवं वास्तुकला का वर्णन इसे तीन कालों में विभाजित करके किया जा सकता है-

1. प्राचीन स्थापत्य एवं वास्तुकला
2. मध्यकालीन स्थापत्य एवं वास्तुकला
3. आधुनिक स्थापत्य एवं वास्तुकला

प्राचीन स्थापत्य एवं वास्तुकला

प्राचीन भारतीय इतिहास में सैन्धव काल, मौर्यकाल, शुंगकाल, कुषाण काल, सातवाहन काल, गुप्त काल, हर्ष वर्द्धन काल के अलावा राष्ट्रकूट, पल्लव, चोल तथा चालुक्य आदि शासकों के काल में भारतीय स्थापत्य एवं वास्तुकला उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर रहा।

सैंधवकालीन वास्तुकला

भारत में वास्तुकला का आरंभ हड़प्पा काल या सैंधव काल में हुआ माना जाता है। सैंधवकालीन स्थापत्य एवं वास्तुकला का ज्ञान प्रसिद्ध सिन्धुकालीन स्थल हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो के उत्खनन में प्राप्त अवशेषों से होता है। सार्वजनिक सभा भवन, स्नानागार, अन्नागार आदि सैंन्धव कालीन वास्तुकला के कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो आज भी हमारे लिए गौरव के विषय बने हुए हैं। इस सभ्यता के शासक तथा समृद्ध व्यापारी कला के प्रेमी थे तथा उन्होंने वास्तुकला के विकास को पर्याप्त योगदान दिया।

सिंधु सभ्यता के दो जुड़वा नगर-हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो सभ्यता के केन्द्र थे। ये दोनों नगर इस अर्थ में प्रतिनिधित्व करते हैं कि इनके नगर-योजना का अनुकरण बिना किसी बदलाव के अन्य केन्द्रों में भी किया गया है। दोनों नगर 1 वर्ग मील के क्षेत्रफल में फैले हुए थे। दोनों नगर के चारो ओर सुरक्षा दीवार थी। नगरों में समकोण पर काटती हुई सड़के थीं। गलियों की स्थिति और बनावट यातायात की सुविधा और सिद्धांतों के अनुरूप थी। गलियाँ मोड़ पर वृत्तीय थे जिससे कि बैलगाड़ियों व अन्य वाहनों को घुमाने में सुविधा होती थी। ये गलियाँ नगर को 12 ब्लॉकों में विभाजित करती थीं।

भवन निर्माण में कच्ची-पक्की ईंट, गारा एवं चूने का प्रयोग किया जाता था। ईंटे सुडौल, हल्के लाल रंग की तथा एक निश्चित अनुपात की प्रयुक्त की जाती थीं। इनकी लम्बाई, चौड़ाई से दुगुनी और मोटाई आधी होती थी। भवनों के छत सपाट होते थे। भवनों में अधिकांशतः आयताकार स्तंभों का प्रयोग किया जाता था। प्रत्येक घर में स्नानागार एवं शौचालय का निर्माण किया जाता था। विभिन्न सुविधाओं से युक्त भवन, अन्न भंडार, विशाल स्नानागार आदि से पता चलता है कि इस सभ्यता के लोग वास्तु निर्माण कला में दक्ष थे।

मौर्यकालीन वास्तुकला

भारतीय वास्तुकला का दूसरा चरण मौर्यकाल में आरंभ होता है। यह उल्लेखनीय कलात्मक उपलब्धियों का काल था। यूनानी शासक सेल्यूकस का राजदूत बनकर भारत आने वाले मेगास्थनीज ने मौर्यशासक चन्द्रगुप्त के महल की काफी प्रशंसा की है। यह महल बहुत बड़ा, सुख-सुविधाओं से भरपूर और खुदे हुए चित्रों से युक्त लकड़ी का बना था। प्रारंभ के पाषाण निर्मित भवन भी स्पष्टत: काष्ठ भवनों के अनुरूप ही बने थे। मौर्यकालीन ठोस पाषाणनिर्मित स्तंभ यह सिद्ध करते हैं कि उस समय के कलाकारों को पाषाण पर कार्य करने का पूर्ण ज्ञान था।

अशोक के एकाश्म स्तंभ जिन पर उसके प्रसिद्ध शिलालेख अंकित हैं, मौर्यकाल के महान वास्तु स्मारक हैं। कई विद्वान इन स्तंभों पर ईरान का प्रभाव देखते हैं। इन स्तंभों की पॉलिस और चिकनाहट हैरान कर देने वाली है।

साँची का स्तूप इस काल की एक और कलात्मक उपलब्धि है। हर स्तूप में एक छोटा-सा कक्ष होता है, जिसमें बुद्ध के या बौद्ध संतों अथवा भिक्षुओं के पार्थिव अवशेष एक कलश में रखे हुए होते हैं। स्तूपों का बाहरी धरातल आम तौर पर ईंटों का बना होता है और उस पर प्लास्टर की एक पतली तह चढ़ी होती है। स्तूप के ऊपरी भाग में पत्थर की एक-एक छतरी होती है। स्तूप के चारों ओर परिक्रमा का एक रास्ता होता है जो रेलिंग से घिरा होता है। साँची का स्तूप आज भी सही सलामत है और पूरे गौरव के साथ सुरक्षित एक शानदार स्मारक के रूप में मौर्य कालीन वास्तुकला का प्रतिनिधित्व करता है।

गुफा वास्तुशिल्प का उद्भव मौर्य काल में ही हुआ। भारत के विभिन्न भागों में एक हजार से अधिक गुफाओं का पता चला है, जो दूसरी सदी ईसा-पूर्व से लेकर दसवीं सदी ईसवीं तक की हैं। अधिकांश गुफाएँ बौद्ध कला से संबंधित हैं पर कुछ हिन्दू और जैन कला की भी हैं। इस काल का गुफा वास्तुशिल्प अभी अपनी शैशवावस्था में था। इसका पता अशोक द्वारा आजीवक भिक्षुओं को समर्पित बराबर पहाड़ी की दो गुफाओं से चलता है। ये गुफाएँ उन प्रामाणिक धार्मिक सभास्थलों की स्थापन्न थीं जिनमें एक आँगन में बनी छप्परदार गोल झोपड़ी होती थी।

बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों की गुफाएँ साजसज्जा से नितान्त विहीन हैं। लेकिन बराबर के निकट नागार्जुन की केवल एक गुफा में सामान्य नक्काशीदार द्वार है जो मौर्यकाल का ही है। इसके समस्त गुफाओं की भित्तियों पर भली भाँति पॉलिश की हुई है। इसमें संदेह नहीं कि ये पॉलिश उसी शैली के कलाकारों द्वारा की गयी है जिन्होंने अशोक के स्तंभों पर पॉलिश कि थी।

शुंगकालीन वास्तुकला

शुंग नरेशों का शासनकाल वास्तु एवं स्थापत्य कला की उन्नति के लिए विख्यात है। शुंग कला के उत्कृष्ट नमूने मध्य प्रदेश के भरहुत, साँची, बेसनगर तथा बिहार के बोधगया से प्राप्त होते हैं।

शुंग वास्तु कला के सर्वोत्तम उदाहरण स्तूप हैं। इस काल में सतना के समीप भरहुत में एक विशाल स्तूप का निर्माण हुआ था। भरहुत स्तूप का निर्माण पक्की ईंटों से हुआ था तथा नींव सुदृढ़ पत्थर की बनी थी। स्तूप को चारों ओर से घेरने वाली गोलाकार वेदिका पूर्णतया पाषाण निर्मित थी, जिसमें संभवत: चार तोरण द्वार लगे थे। भरहुत स्तूप की वेदिका, स्तंभ तथा तोरणपट्टों पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ एवं चित्र महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं, जातक कथाओं तथा मनोरंजक दृश्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शुंग काल में भी साँची में दो स्तूप बनाये गये, जो भारत के बौद्ध स्मारकों में अपना सर्वोपरि स्थान रखते हैं।

इस काल में बने बोध गया के मंदिर पर भी भरहुत के चित्रों के प्रकार के चित्र उत्कीर्ण मिलते हैं। लेकिन मानव आकृतियों के अंकन में कुछ अधिक कुशलता दिखायी गयी है। बेसनगर (विदिशा) से प्राप्त हेलियोडोरस का गरूड़ स्तंभ भी शुंगकालीन है। शिल्प कला की दृष्टि से यह स्तंभ अत्यंत सुन्दर तथा हिन्दू धर्म से संबंधित प्रथम प्रस्तर स्तंभ है। यह सम्पूर्ण निर्माण कलापूर्ण और आकर्षक है।